ताण्ड्य ब्राह्मण में कृषि

[1]डॉ. नवीन कुमार

सारांश

भारतीय संस्कृति के स्वर यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि वैदिक संस्कृति निरंतर आगे बढ़ते रहने को अपना लक्ष्य मानती आई है और उसके लिए जिस अनुसंधान की आवश्यकता है, वह दृष्टि उसके पास है। प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया जा रहा है कि मनुष्य के जीवन के लिए प्रथम आवश्यकता नियमित भोजन की उपलब्धता रही है। वेद और वैदिक साहित्य मैं इस दिशा में बढ़ते हुए मानव के पदचाप को स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है। वेद का ऋषि कृषि का गुणगान करता हुआ कहता है कि मुझे सविता देव ने कहा है जुआ मत खेलो, कृषि ही कर उसे प्राप्त आय को ही बहुत मान। इसी कृषि कर्म से गायों अर्थात समृद्धि की प्राप्ति होती है और उसे पत्नी की प्राप्ति भी होती है इस प्रकार मनुष्य जिस सुखमय विविधता पूर्ण संसार की कल्पना कर सकता है उस सब कुछ उपलब्धि कृषि से ही होती है[1]

मूल शब्द: कृषि, वैदिक संस्कृति, वेद और वैदिक साहित्य, ताण्ड्य ब्राह्मण.

---

[1]सहायक आचार्य संस्कृत, गवर्नमेंट कॉलेज झंडुत्ता बिलासपुर email :sharmanavi2020@gmail.com

प्रस्तावना

कृषि का महत्व :-. ब्राह्मण ग्रंथों में अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि को माना है। कृषि कार्य गौरव का कार्य माना जाता था,अतएव इन्द्र और उषा दोनों को कृषि कार्य में लगाया गया है । यजुर्वेद में राजा के चार प्रमुख कर्तव्य बताए गए हैं 1.कृषि की उन्नति 2. जनकल्याण 3. राष्ट्र की श्री वृद्धि और 4.राष्ट्र को पुष्ट करना । इन में कृषि को सबसे अधिक प्रमुखता दी गई है। ताण्ड्य ब्राह्मण में कृषि तथा व्यवसाय को जीविका का प्रशस्त साधन माना गया है।[2] कृषि के द्वारा उत्पन्न अन्न समस्त जगत का पालक है अन्न से सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं तथा अन्न से ही प्राणियों का जीवन चलता है। कृषि के महत्व को जानकर ही विराट्,[3] ऋषम[4] द्वाविंशतिसत्र [5]सप्तत्रिंशत् रात्र [6] आदि यागों का आयोजन कृषि कार्य हेतु किया जाता था ।अन्न उत्पादक को समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। अधिक अन्न उगाने वाले को अन्नाद् कहा जाता था। [7] ताण्ड्य ब्राह्मण में दो प्रकार की कृषि का वर्णन प्राप्त होता है, कृष्टपच्या और अकृष्टपच्या [8]। कृष्टपच्या का अर्थ वह अन्न जिसको उगाने में परिश्रम करना पड़े अर्थात् जो किसान के द्वारा उगाया जाता है जैसे धन्यादि।अकृष्टपच्य से तात्पर्य निवारादि से है, जो अपने आप उगते हैं,जिनसे किसान का कोई संबंध नहीं है यह स्वतः उपज जाते हैं। जो कृषक जिस क्षेत्र पर कृषि करता था उसको 'क्षेत्रपति' कहा जाता था [9] ।कृषि कार्य हेतु देवताओं में भी से प्रतिस्पर्धा का उल्लेख ताण्ड्य ब्राह्मण में प्राप्त होता है।[10] इससे कृषि कार्य की महत्ता और श्रेष्ठता सिद्ध होती है ।

कृषि के प्रमुख अंग:-

भूमि:-. मानव जीवन के समस्त क्रियाकलाप भूमि पर ही होते हैं अन्न, वनस्पति, औषधि, खनिज आदि इसी से मिलते हैं । कृषि के लिए भी मुख्य रूप से भूमि की आवश्यकता होती है अथर्ववेद में भूमि को माता तथा मानव को पुत्र कहकर भूमि की महत्ता स्वीकार किया है। [11] अतः हमारे समस्त क्रियाएं भूमि की गोद में ही संपन्न होती है। ऋग्वेद में अप्नस्वती,अर्चना तथा उर्वरा तीन प्रकार की भूमि का वर्णन मिलता है। ताण्ड्य ब्राह्मण में कृष्टपच्या और अकृष्टपच्या भूमि का उल्लेख किया गया है। [12] अकृष्टपच्या भूमि का महत्व और उपयोगिता कृष्टपच्या अर्थात जिस भूमि पर कृषि कार्य है,से कम उपयोगी नहीं है। अकृष्टपच्या भूमि पर अनेक प्रकार की वनस्पतियां,औषधीयां, वृक्ष आदि प्राकृतिक वन्य अन्न उपजते हैं, जिससे अनेक प्राणियों का निर्वाह होता है । मानव जीवन बहुत कुछ वनों पर निर्भर करता है । वन राष्ट्रीय की महान संपदा है। जिस राष्ट्र में वनों का अभाव होता है। वहां का समुचित विकास संभव नहीं है।वृक्षों वनों की बहुलता ही भारत में कृषि प्रधानता का कारण है। वनों से भूमि की उपजाऊ मिट्टी की रक्षा होती है। जिससे भूमि कृषि योग्य बनती है।

हल:- कृषि कर्म करने के लिए जिस साधन की अपेक्षा होती है वह पाल अर्थात् हल है पुरातन काल से लेकर आज के वैज्ञानिक युग में भी कृषि का अन्यतम साधन फाल ही है इसके बिना ना प्राचीन काल में कृषि कर्म संभव था और ना आज है।इसलिए अथर्ववेद में कहा गया है कि फाल से कृषि कर्म करने पर खेती बढ़ती है सर्वप्रथम हल द्वारा खेत को जोतने की शिक्षा अश्विनी द्वारा दी गई थी ।हल द्वारा भूमि को जोड़कर वपन क्रिया की जाती थी। [13] और जुताई के कार्य में बैलों के अतिरिक्त उष्ट्र, अश्व भी जूते जाते थे।

खनित्र:- कृषि साधनों में खनित्र का वर्णन ताण्डय ब्राह्मण में मिलता है [14]।खोदने के साधन भूत कुदाल ,फावड़ा आदि का प्रयोग मानव द्वारा किए जाने का स्पष्ट संकेत है। कंदमूल आदि को यंत्र से खोदा जाता था।आधुनिक काल में भी इन यंत्रों का कृषि कार्य में प्रयोग किया जाता है। अतः खनित्र जैसे कृषि उपकरणों का प्रयोग पुरातन काल से होता आ रहा है।

खाद:-. कृषि में अधिक पैदावार हेतु खाद का प्रयोग किया जाता है। यह खाद कृषि का भोजन है ।भूमि को उपजाऊ बनाने तथा पैदावार की वृद्धि के लिए खाद का प्रयोग का वर्णन है। गाय के गोबर को खाद के रूप में प्रयोग किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण में प्रतिपादित है कि गाय का गोबर भूमि में फसल को बढ़ाने की शक्ति पैदा करता था, अतः गाय के गोबर को कृषि कार्य के लिए एकत्रित किया जाता था। [15]ब्राह्मण ग्रंथों में रासायनिक खाद का उल्लेख नहीं मिलता है गाय आदि पशुओं के गोबर को खाद के रूप में प्रयोग करने का उल्लेख था अथर्ववेद में भी मिलता है। [16]

जल सिंचाई:- खेत में खड़ी फसलों को पानी देना ही सिंचाई कहलाती है।कृषि से प्रचुर मात्रा में अन्न प्राप्त करने के लिए जल संचय की अत्यधिक आवश्यकता होती है।यदि कृषि को उचित समय पर जल प्राप्त ना हो तो कृषि के लिए किया गया सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है।कृषि में सिंचाई भिन्न-भिन्न स्रोतों के द्वारा होती है यथा नदियों के द्वारा, वर्षा के द्वारा एवं कूपादि के द्वारा। ब्राह्मण ग्रंथों में कृषि की सिंचाई के लिए अधिकांश रुप से वर्षा पर निर्भर का वर्णन मिलता है फिर भी नदियों तथा कूपों कारण उल्लेख भी कहीं-कहीं मिल जाता है जैसे सरस्वती तथा द्वषद्ती का उल्लेख ताण्डय ब्राह्मण मे मिलता है [17] यमुना नदी का उल्लेख भी मिलता है जो कारपचव प्रदेश के मध्यवर्ती भाग्य से गुजरती है [18] ।रोहित नदी के कूल को जीतने का उल्लेख भी ताण्डय ब्राह्मण में मिलता है[19]।

गौरीविति ऋषि ने सर्वर्द्धिसाधन षट्त्रिशत् संवत्सरसत्र का अनुष्ठान यव्यावती नदी के तट पर किया था। [20] अतएव इन सब नदियों का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि उस समय सिंचाई इन नदियों से होती होगी। इसके अतिरिक्त वर्षा का भी उल्लेख प्राप्त होता है सिंचाई के लिए वर्षा की कामना ताण्डय ब्राह्मण में देखने को मिलती है[21]।अकाल पड़ने पर विभिन्न यज्ञों के माध्यम से वृष्टि करवाई जाती थी।अयास्य ऋषि ने अकाल पड़ने पर अयास्य नामक साम द्वारा वृष्टि करवाने का उल्लेख मिलता है। [22] प्रजापति वृष्टि द्वारा अन्न प्रदान करते हैं ,का उल्लेख भी अन्यत्र हुआ है।[23] इस विवरण से प्रतीत होता है कि सिंचाई का साधन वर्षा थी।वर्षा होने पर कृषि कार्य सरल हो जाता है तथा प्रचुर मात्रा में अन्न धान्य उत्पन्न होता है।

विविध अन्न:- ताण्डय ब्राह्मण में अन्न वाचक अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है,वहां विभिन्न प्रकार के अन्न दृष्टिगोचर होते हैं। अन्न के लिए अर्क शब्द का प्रयोग मिलता है।[24] एक जगह अन्न के लिए पृश्नि शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है।[25]पुरुष का श्रेष्ठ भोजन अन्न को बताया गया है।[26] साम को देवों का अन्न माना गया है, इसी से देव ऊर्जा को प्राप्त कर समस्त प्रजा को ऊर्जा प्रदान करते हैं। [27] यजमान तीन दिनों तक निषादों की बस्ती में रहकर निवार,श्यामाक से निर्वाह करता है।[28] इसके अतिरिक्त कंदमूल एवं फल आदि पर निर्वाह का वर्णन भी मिलता है।[29] ताण्डय ब्राह्मण में यव को बहुत महत्व दिया गया है। यव का प्रयोग पहले सामान्य अन्न हेतु होता था।पुन:'जौ' के रूप में प्रयोग होना इसके महत्व को प्रतिपादित करता है ।राजा वरुण को यव का भोजन अधिक प्रिय था। [30] दक्षिणा में दिए जाने वाले अन्नों में तिल तथा माष का वर्णन भी प्राप्त होता है।[31] अन्य अन्नों के साथ इन्हें भी बोया और काटा जाता था। [32] ताण्डय ब्राह्मण में 'सप्तदश अन्न' का वर्णन भी प्राप्त होता है।[33] सप्तदश अन्नों में सात ग्राम्य तथा सात अरण्य अन्नों का उल्लेख मिलता है।जो अन्न अपने आप उपजते थे वे अरण्य वन के अंतर्गत आते थे।इनसे ऋषि मुनियों का भोजन सुलभता से प्राप्त हो जाता था।इनमें यव तथा ब्रीही आदि अन्नों का भी उल्लेख है[34]।

निष्कर्ष:- प्रस्तुत शोध पत्र में ब्राह्मणकालीन समय के विकास का अध्ययन किया गया हैं।विशेषकर ताण्ड्य ब्राह्मण के समय की जाने वाली कृषि क्रियाओं की जानकारी मिलती है तथा उस समय कृषि के लिए जोताई, बुवाई ,सिंचाई और विविध अन्नों की जानकारी मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ

1. ऋग्वेद 10.34.7
2. ता. ब्रा.17.1.2
3. वहीं 19.2.1
4. वहीं 19.12.3
5. वहीं 23.17.1
6. वहीं 24.7.2
7. वहीं 5.8.1
8. वहीं 6.9.9
9. कौ.ब्रा. 18.6
10. ता..ब्रा. 11.5.9

11. अथर्ववेद 12.1.12
12. ता.ब्रा. 6.9.9
13. श.ब्रा. 7.2.2.9-10
14. ता.ब्रा. 16.6.5
15. श.ब्रा. 2.1.1.7,12.5.2.3
16. अथर्ववेद 3.14.3-4,19.31.3
17. ता.ब्रा. 25.10.1,25.10.11,25.10.14
18. वहीं 25.11.23
19. वहीं 14.3.13
20. वहीं 25.7.4
21. वहीं 6.10.15
22. वहीं 11.8.11
23. वहीं 8.8.17
24. वहीं 5.1.9
25. वहीं 12.10.24-25
26. वहीं 12.4.20
27. वहीं 6.4.13
28. वहीं 16. 6.7
29. वहीं 16.6.3-5
30. वहीं 18.9.17
31. वहीं 16.1.10
32. [1] वहीं 1.8.15
33. [1] वहीं 2.7.7
34. [1] ता.ब्रा. 6.8.11